लोकविद्या जन आन्दोलन पुस्तकमाला–1

विस्थापन रोको

विद्या आश्रम
सारनाथ, वाराणसी–221007

लोकविद्या जन आन्दोलन

वैचारिक प्रस्ताव

- वैश्वीकरण और कम्प्यूटर–इन्टरनेट ने लोकविद्या और संगठित विद्या के बीच के अन्तर्विरोध को खुल कर सामने ला दिया है। ज्ञान के क्षेत्र की ये दो दुनियाँ जैसे कि हाड़–मांस की खुले आम बनाई जा रही दो दुनियाँ का कारक भी हों और नतीजा भी। चाहे अध्ययनों के हवाले से देखें या फिर अपने खुद के अनुभवों से जानें, पूरे विश्व में और भारत में भी अमीरों और गरीबों के बीच की खाई निरंतर बढ़ती ही चली जा रही है। किसानों, आदिवासियों, मज़दूरों, कारीगरों, छोटे–छोटे दुकानदारों और उनके परिवारों (लोकविद्याधर समाजों) का शोषण, उत्पीड़न, विस्थापन और दमन बढ़ता ही चला जा रहा है। खुले आम दो दुनियाँ बसाई जा रही हैं। एक तरफ उन्माद है, राजधानियों में केन्द्रित राजनीति का उन्माद, धार्मिक प्रतिष्ठानों का उन्माद, बड़ी पूँजी व विश्व बाजार का उन्माद और उच्च शिक्षा संस्थानों का उन्माद, और दूसरी तरफ बेहाल जनता को संगठित करने वाले नई परिस्थितियों से मुकाबला करने के रास्ते खोज रहे हैं।
- यह समझना जरूरी है कि ये रास्ते ज्ञान की दुनिया से होकर गुजरते हैं। जब तक किसान और आदिवासी, कारीगर और महिलायें, पटरी के व्यवसाई और मजदूर अपने ज्ञान का, लोकविद्या का दावा नही पेश करते, जब तक यह दावा नही पेश किया जाता कि पूँजी और शैक्षणिक व्यावसायिकता के प्रभुत्व को बुनियादी चुनौती लोकविद्या ही दे सकती है और यह कि सामाजिक और आर्थिक बराबरी तथा भाईचारे का समाज लोकविद्या के आधार पर ही बनाया जा सकता है, तब तक हम बुनियादी बदलाव के अपने–अपने कटघरों और कल्पनालोकों में कैद रहेंगे। लोकविद्याधर समाज का ज्ञान का दावा ही नई आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक सोच को जन्म दे सकता है। **लोकविद्या जन आन्दोलन** इसी दावे को मूर्तरूप देता है।
- लोकविद्या लोगों के बीच बसती है और ज्ञान का मूल रूप है। सभी ज्ञान लोकविद्या से शुरू होता है और लोकविद्या में ही वापस आता है। जो ज्ञान लोकविद्या में वापस नही आता वह मनुष्य और प्रकृति का नाश करता है तथा ज्ञान कहलाने लायक नही होता। लोकविद्या जन आन्दोलन लोकविद्याधर समाज का वह ज्ञान आन्दोलन है जो लोकविद्या दृष्टिकोण के मुताबिक लोकहित में समाज के बुनियादी पुनर्संगठन के रास्ते खोलता है। हर क्षेत्र के लोकविद्या विचार से प्रेरित कार्यकर्ताओं को लोकविद्याधर समाज के ज्ञान आन्दोलन का निर्माण करना होगा। यही **लोकविद्या जन आन्दोलन** होगा।

[यह प्रस्ताव लोकविद्या जन आन्दोलन की पहली तैयारी बैठक में सर्वसम्मति से पारित हुआ। 20–21 नवम्बर, 2010 को विद्या आश्रम, वाराणसी में हुई इस बैठक में देश के विभिन्न भागों में लोकविद्या दृष्टिकोण से कार्य कर रहे कार्यकर्ताओं ने भाग लिया था।]

लोकविद्या जन आन्दोलन का पहला राष्ट्रीय अधिवेशन
12–13 नवम्बर, 2011 को वाराणसी में होगा।

लोकविद्या जन आन्दोलन पुस्तकमाला–1

विस्थापन रोको

विद्या आश्रम

सारनाथ, वाराणसी–221007

लोकविद्या जन आन्दोलन पुस्तकमाला–1

पुस्तिका : विस्थापन रोको

वर्ष : अप्रैल, 2011

सहयोग राशि : रु. 10.00

प्रकाशक :

विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी के लिये डा. चित्रा सहस्रबुद्धे, समन्वयक, विद्या आश्रम द्वारा प्रकाशित।

पता : विद्या आश्रम, सा10 / 82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी–221007

फोन : 0:0542–2595120, 9839275124

ई–मेल : vidyaashram@gmail.com

वेबसाइट : vidyaashram.org

ब्लाग :

- **lokavidyajanandolan.blogspot.com**
- **lokavidyapanchayat.blogspot.com**
- **angadhmangadh.blogspot.com**

लोकविद्या जन आन्दोलन पुस्तकमाला

विस्थापन रोको

विषय सूची

1.	विषय प्रवेश	–	4
2.	समाज जो उजाड़े जा रहे हैं	–	5
3.	समाजों को उजाड़ने के कारण	–	5
4.	विस्थापन मनुष्य को उसके ज्ञान (लोकविद्या) से अलग करता है	–	6
5.	विस्थापन ज्ञानियों को सस्ते मज़दूर बनाता है	–	6
6.	स्त्री समाज पर गलत प्रभाव	–	7
7.	ज्ञान व संस्कृति का नाश	–	7
8.	क्षेत्रीय समाज पर विपरीत प्रभाव	–	8
9.	पर्यावरण का नाश	–	9
10.	विस्थापन और राजनीति	–	9
11.	नई दास व्यवस्था	–	10
	• अमीरों की नई दुनिया का निर्माण		
	• लोकविद्याधर समाज को दास बनाना		
12.	नई बाजार नीति लोकविद्याधर समाज को दास बनाती है	–	11
13.	विस्थापन विरोध के आन्दोलन	–	12
14.	मुआवजे की राजनीति	–	13
15.	जीने के अधिकार का अर्थ	–	14
16.	लोकविद्या जीवनयापन अधिकार	–	14
17.	लोकविद्याधर समाज की एकता में ही विस्थापन रोकने की ताकत है	–	15

विषय प्रवेश

विस्थापन आज की दुनिया का एक बहुत बड़ा और आक्रामक सच है। चारों तरफ विस्थापन की ही गूँज है। किसानों की जमीनों का अधिग्रहण, आदिवासियों का अपनी जमीनों व जंगलों से खदेड़ा जाना, ठेले–पटरी की दुकानों पर बुलडोजर चलना, स्थानीय उद्योगों, सेवाओं व मनोरंजन के आधुनिकीकरण से कारीगरों का काम छीना जाना, यही आज की सबसे बड़ी वास्तविकता है।

विस्थापन के विरोध में देश के अनेक हिस्सों में बड़े–बड़े जन प्रतिरोध खड़े हुए हैं। विस्थापित समुदाय लड़ रहे हैं। पुलिस और प्रशासन पूँजीपतियों के साथ मिलकर उन पर जुल्म ढा रहे हैं, लाठी–गोली बरसा रहे हैं। सभी राजनीतिक दलों में सहमति है कि विस्थापन अनिवार्य है। वे समझते हैं कि इसके बिना विकास संभव नही है। पढ़े–लिखे वर्ग भी ऐसे ही 'विकास' में अपना भविष्य देख रहे हैं।

विस्थापन के जरिये सत्ता और उस पर काबिज वर्ग संसाधनों पर कब्जा करते हैं, बाजार पर कब्जा करते हैं, सस्ते मजदूरों की फौज तैयार करते हैं और जन–जीवन तथा लोकविद्या के बीच अलगाव पैदा करते हैं। पैसे वाले लोगों के लिये सुरक्षा के घेरे में एक ऐशो–आराम और सैर–सपाटे की उछृंखल दुनिया बनाई जा रही है और इसके लिये लोकविद्याधर समाज को अपने स्थानों और धंधों से विस्थापित किया जा रहा है।

अधिकांश लोग अपनी विद्या **(लोकविद्या)** के बल पर अपना जीवन चलाते हैं। **लोकविद्या और स्थानीय संसाधनों के बीच का रिश्ता किसानों, कारीगरों, आदिवासियों और छोटा धंधा करने वालों के परिवारों की जीवनरेखा होता है।** प्राकृतिक संसाधनों का क्षय न होने देने की जिम्मेदारी ये ही निभाते आये हैं। ये समाज लगभग पूरे के पूरे आधुनिक शिक्षा से वंचित हैं और लोकविद्या के स्वामी हैं, इन्हें ही **लोकविद्याधर समाज** कहा जाता है। **विस्थापन में लोकविद्याधर समाज के लिये एक नई गुलामी का पैगाम है।** विस्थापन विरोधी संघर्षों के साथ लोकविद्याधर समाज में व्यापक आपसी एकता के नये सूत्र अस्तित्व में आये हैं।

यह पुस्तिका विस्थापन पर वह समझ बनाने का प्रयास है जिसके आधार पर सामाजिक कार्यकर्ता लोकविद्याधर समाज के बीच एकता स्थापित करने के कार्य कर सकें। लोकविद्याधर समाज की एकता के जरिये ही शोषण, विषमता और गरीबी का अंत किया जा सकता है और प्रकृति का नाश रोका जा सकता है।

समाज जो उजाड़े जा रहे हैं

- आदिवासी
- किसान
- कारीगर
- छोटे व पटरी के दुकानदार
- झुग्गी–झोपड़ी के निवासी

सभी उखाड़े जा रहे समाज अपने ज्ञान, हुनर, मूल्यों और प्रबन्धन क्षमता के बल पर अपनी जीविका चलाते हैं। **इनका ज्ञान लोकविद्या कहलाता है और ये सभी लोकविद्याधर समाज हैं।**

समाजों को उजाड़ने के कारण

क्रम	समाज	मुख्य कारण
1.	आदिवासी	खनिज उत्खनन, बिजलीघर, बाँध, भारी उद्योग, वनों पर सरकारी आधिपत्य
2.	किसान	बिजलीघर, राजमार्ग, शहरों का विस्तार, रिहायशी कालोनियाँ, शहरी मल–कूडे का निस्तारण, पर्यटन व मनोरंजन उद्योग, हवाई अड्डा, भारी उद्योग व बाजार नीति
3.	कारीगर	वैश्वीकरण, उदारीकरण, निजीकरण, विदेशी मशीनें, संसाधनों का असमान प्रावधान व बाजार नीति
4.	छोटे–पटरी के दुकानदार व झुग्गी–झोपड़ी निवासी	शहरों का पुनर्संगठन, अमीरों के बाजार, फुटकर धंधों में देशी–विदेशी घरानों को छूट, बाजार नीति

विस्थापन मनुष्य को अपने ज्ञान (लोकविद्या) से अलग करता है।

- विस्थापन के चलते लोकविद्याधर समाज से लोकविद्या के बल पर जीने के मौके छिन जाते हैं। क्योंकि उसके संसाधन (जमीन, जंगल, बाजार आदि) उससे छिन जाते हैं। प्रकृति और समाज से वह कट जाता है। नया ज्ञान प्राप्त करने के भी मौके नही हैं।
- इस तरह लोकविद्याधर समाज के लोगों पर उन्हें ज्ञान से अलग होने की, उन्हें ज्ञानविहीन बनाने की जबर्दस्ती थोपी जा रही है ताकि वे केवल मज़दूर बनकर ही जी सकें।

- मनुष्य के ज्ञान और प्रकृति के बीच सम्बन्ध में ही समाज का वैचारिक, नैतिक और भौतिक आधार होता है। लोकविद्या के बल पर प्रकृति के साथ सम्बन्ध ही एक न्याय संगत समाज की उम्मीद ज़िन्दा रख सकता है।

विस्थापन ज्ञानियों को सस्ते मज़दूर बनाता है

- किसान, कारीगर, आदिवासी और छोटे व पटरी के दुकानदार अपने ज्ञान व हुनर से अलग होकर केवल शारीरिक श्रम पर आधारित सस्ते मज़दूर बना दिये जाते हैं।

- विस्थापन इनके घरों के मुखिया को ही नहीं, बल्कि पूरे के पूरे परिवार यानि औरतों–बच्चों सहित, सबको मज़दूरों की सेना में शामिल करवा देता है।

- विस्थापन के बाद स्थानीय समाज का हिस्सा न रह जाने से वे सौदेबाजी में कमज़ोर पड़ते हैं और तमाम अपमानपूर्ण समझौतों के साथ कम–से–कम मज़दूरी में काम के लिये बाध्य होते हैं।

स्त्री–समाज पर गलत प्रभाव

- विस्थापन के शिकार समाजों की स्त्रियाँ कृषि, कारीगरी अथवा प्रबन्धन के कार्यों में अपनी भूमिका खो बैठती हैं।
- स्त्रियों के ज्ञान और हुनर की दुनिया का आधार टूट जाता है।
- उनके सामने मज़दूरी के अलावा कोई रास्ता नही बचता।
- वे नीचे दिये गये कार्यों में मज़दूरी कर के एक असुरक्षित और अपमानित जीवन जीने को मजबूर होती हैं–

  – वस्तु उत्पादन की छोटी इकाइयों में मजदूरी करती हैं।

  – निर्माण उद्योग में ईंट–गारे का काम करती हैं।

  – घरों में झाडू–पोंछे का काम करती हैं।

ज्ञान व संस्कृति का क्षय

- विस्थापन से जीवन का ताना–बाना ही टूट जाता है,
- विस्थापित लोग किसी ग्राम समाज या स्थानीय समुदाय के हिस्सा नहीं रह जाते,
- अपनी विरासत व ज्ञान परम्परा से बिछड़ जाते हैं,
- उनकी अपनी सामाजिक सुरक्षा के तंत्र टूट जाते हैं और ऐसे में वे सांस्कृतिक मार के शिकार हो जाते हैं,
- उनकी रचनाशीलता और मूल्यों पर विपरीत प्रभाव पड़ते हैं और जीवन की गुणवत्ता तेजी से घटती चली जाती है।
- चूँकि लोकविद्याधर समाज अपनी संख्या और ज्ञानपूर्ण जीवन की गतिविधियों के बल पर पूरे समाज की संस्कृति को गढ़ते रहे हैं, उनकी बदहाली और लाचारी से पूरे समाज की संस्कृति का क्षय होता है।

क्षेत्रीय समाज पर विपरीत प्रभाव

विस्थापन से विस्थापितों की ज़िन्दगी तो तबाह होती ही है, साथ ही पूरे क्षेत्रीय समाज पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। जहाँ विस्थापन होता है वहाँ की पुरानी खेती, कारीगरी और दुकानदारी टूट जाती है, क्योंकि

- नये लोग आते हैं।
- नया सामाजिक–आर्थिक–प्रशासनिक–सांस्कृतिक तंत्र आकार लेता है।
- नये बाजार बनते हैं जिनमें कमाने वाले सब बाहर से आये लोग होते हैं, स्थानीय लोगों को फुटकर मज़दूरी से ज्यादा कुछ नही मिलता।
- नई प्राथमिकतायें अस्तित्व में आती हैं।
- स्थानीय समाज के बहुत थोड़े से लोग इन नई व्यवस्थाओं में जगह पाते हैं तथा अधिकांश पर विपरीत प्रभाव ही पड़ता है।
- पूरा क्षेत्र सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक बिगाड़ का शिकार बनता है।

इसलिये पूरा स्थानीय समाज मुआवजे का अधिकारी होना चाहिये।

यह मुआवजा उन्हें लोकविद्या के बल पर अपने जीवनयापन के काम करते रहने के लिये आवश्यक वित्तीय व भौतिक संसाधनों तथा उनके उत्पादनों के लिये बाजार की सुविधा के लिये मिलना चाहिये।

पर्यावरण का नाश

खनिज उत्खनन, बिजलीघर, बड़े उद्योग, बाँध, बड़े–बड़े राजमार्ग, आधुनिक कालोनियाँ, शहरों का कूड़ा निस्तारण आदि पूरे इलाके के पर्यावरण को नष्ट कर देते हैं।

- जंगल खत्म हो जाते हैं।
- भूगर्भ जल स्तर बहुत नीचे चला जाता है।
- जल प्रदूषित हो जाता है।
- वायु प्रदूषित हो जाती है।
- बाग–बगीचे–चरागाह नष्ट हो जाते हैं।
- नया कूड़ा अस्तित्व में आता है।
- नई बीमारियाँ व अव्यवस्थायें फैलती हैं।

विस्थापन और राजनीति

- विस्थापन पर सभी राजनीतिक दलों की सहमति है। वे सब विस्थापन को विकास के लिये आवश्यक समझते हैं।
- विस्थापन नीति कारगर हो इसके लिये राजनीतिक दल, प्रशासन और पूँजीपति बड़े नजदीकी गठबंधन में काम करते हैं।
- हर राजनीतिक दल अपने शासन के प्रदेश में विस्थापन नीति को बड़ी बर्बरता से लागू करता है।
- कोई भी राजनीतिक दल लोकविद्याधर समाज के हितों की रक्षा का काम नही करता।

नई दास व्यवस्था

विस्थापन को आजादी के समय से ही ***विकास*** की कीमत के रूप में पेश किया गया। हुआ यह कि इस ***विकास*** की सारी कीमत लोकविद्याधर समाज ने चुकाई और सारा फायदा पूँजीपतियों, अफसरों, नेताओं, ठेकेदारों और बड़ी–बड़ी तनख्वाहों की नौकरी करने वालों को मिला।

सूचना युग में अब जो ***विकास*** के नाम पर हो रहा है उसके सामने नीचे दिये गये लक्ष्य दिखाई देते हैं–

- **अमीरों की नई दुनिया का निर्माण**
- **लोकविद्याधर समाज को दास बनाना**

अमीरों की नई दुनिया का निर्माण

दुनिया भर के अमीर अपने लिये एक राजसी और विलासी दुनिया बना रहे हैं, जिसके तहत वे कुछ व्यवस्थायें बना रहे हैं। इनमें मुख्य हैं–

- सारी सुख सुविधाओं से सम्पन्न रिहायशी इलाके, जो भरपूर बिजली, पानी, खेलने के मैदान, सुरक्षा आदि से सम्पन्न हों।
- अलग किस्म के मॉल बाजार, जिनमें बहुत बड़ी–बड़ी व अंतर्राष्ट्रीय कम्पनियों के ठप्पे वाला कपड़ा, जूता, खाना और इलेक्ट्रानिक सामान आदि मिलता हो।
- आवागमन, घूमने–फिरने व मनोरंजन के विशेष साधन व स्थान, जैसे आलीशान हवाई अड्डे, तरह–तरह की मोटर गाडियाँ, बड़े–चौड़े राजमार्ग, नये–नये होटल, मॉल के सिनेमाघर, कम्प्यूटर पर संगीत–सिनेमा–गेम, पर्यटन के स्थान, विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेल आदि।
- उच्च शिक्षा के बहुत महँगे संस्थान, अत्यधिक महँगे कारपोरेट अस्पताल।
- कम्प्यूटर–इंटरनेट व्यवस्था, जो दुनियाभर में फैले इन लोगों के बीच सम्पर्क–संचार का इंतजाम देती है और जिसके जरिये वे प्रशासन, बाजार, मीडिया, शिक्षा, अनुसंधान, मनोरंजन आदि की कमान अपने हाथ में रखने लगे हैं।
- इस सबके लिये आवश्यक संसाधनों, जैसे ज्ञान, वित्त, भूमि, वन, जलस्रोत, बिजली, कृषि उत्पादन, उद्योग, आदि पर वे कब्जा कर रहे हैं।

लोकविद्याधर समाज को दास बनाना

अमीरों की यह नई दुनिया बेहद महंगी है और इसकी सारी कीमत चुकाने के लिये लोकविद्याधर समाज पर खुली हिंसा और जबर्दस्ती की जा रही है–

- विश्व व्यापार संगठन के अंतर्गत नई बाजार व्यवस्था लोकविद्याधर समाज पर लादी जा रही है। उन्हें अपने ज्ञान, श्रम और उत्पादन को सस्ते से सस्ता बेचने के लिये मजबूर किया जा रहा है।
- विस्थापन नीति द्वारा लोकविद्याधर समाज को सारे राष्ट्रीय, प्राकृतिक और निजी संसाधनों से बेदखल किया जा रहा है। इन सभी संसाधनों पर अमीर वर्गों को कब्जा दिलाया जा रहा है।

नई बाजार नीति लोकविद्याधर समाज को दास बनाती है।

देश की बाजार नीति विस्थापन और दास व्यवस्था का एक मज़बूत आधार तैयार करती है।

- लोकविद्याधर समाज महंगा खरीदे और सस्ता बेचे यह इस बाजार की मूल व्यवस्था है।
- कृषि उत्पाद को दाम कम–से–कम मिले, आदिवासियों का श्रम सस्ते–से–सस्ता उपलब्ध हो, कारीगरी का मूल्य मज़दूरी के रूप में ही आँका जाय, यही आज के बाजार की बनावट है।
- यह बाजार नीति लोकविद्याधर समाज के आपसी लेन–देन को घटाती चली जाती है और व्यावसायिक वर्गों के साथ उनके गैर–बराबर लेन–देन को बढ़ाती जाती है।
- यह बाजार नीति छोटे उद्यमों और उद्योगों को नष्ट करके, ठेला–पटरी–छोटी दुकानदारी को खत्म कर के और स्थानीय सेवाओं व मनोरंजन के आधुनिकीकरण को बढ़ावा देकर, गरीबी और बेरोजगारी बढ़ाती जाती है।
- वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण ने इस बाजार व्यवस्था को और व्यापक व गहरा बनाया है। यही लोकविद्याधर समाज की बढ़ती गरीबी का प्रमुख कारण है और विस्थापन की मज़बूरी का आधार है।

विस्थापन विरोध के आन्दोलन

देश भर में लोकविद्याधर समाज ने विस्थापन के खिलाफ आवाज़ उठाई है। बाँधों के डूब क्षेत्र के आदिवासियों के आन्दोलन, शहरों में बस्तियों और पटरी के दुकानदारों के विस्थापन विरोधी संघर्ष, नगरों के विस्तार में होने वाले भूमि अधिग्रहण के खिलाफ किसानों के संघर्ष और बड़े उद्योगों के लिये भूमि अधिग्रहण के विरोध में किसानों और आदिवासियों के संघर्ष बढ़ते ही जा रहे हैं। इस वक्त प्रमुख रूप से नये बिजलीघरों और धातु उद्योगों हेतु निजी कम्पनियों को जमीन सौंपने के लिये बड़े पैमाने पर सरकार द्वारा भूमि अधिग्रहण किया जा रहा है। नीचे अभी चल रहे कुछ प्रमुख आन्दोलनों का जिक्र है। अधिकांश ऐसे हैं जहाँ आन्दोलनकारी प्रशासन द्वारा हिंसक दमन और पुलिस की गोली का शिकार हुए हैं।

- **उडीसा** के जगतसिंहपुर जिले में दक्षिण कोरिया की कम्पनी पोस्को की इस्पात व बिजली परियोजना के लिये भूमि अधिग्रहण के खिलाफ किसानों का मोर्चा।
- **पश्चिम बंगाल** में सिंगुर में टाटा के मोटर कारखाने के लिये और नन्दीग्राम में इन्डोनेशिया के सलीम ग्रुप के लिये रासायनिक कारखाने के लिये भूमि अधिग्रहण का किसानों द्वारा विरोध।
- **छत्तीसगढ़** में लोहे व अन्य धातुओं की खानों पर टाटा, मित्तल, जिन्दल, वेदांत जैसी कम्पनियों के निजी कब्जे के लिये सैकड़ों गाँवों के उजाड़ के खिलाफ आदिवासियों का आन्दोलन।
- **आन्ध्र प्रदेश** के श्रीकाकुलम जिले में सोमपेटा और काकड़पल्ली में निजी तापीय बिजलीघर बनाने के लिये भूमि अधिग्रहण का किसानो ंऔर मछुआरों द्वारा विरोध।
- **मध्य प्रदेश** के सिंगरौली जिले में अम्बानी, बिड़ला, दैनिक भास्कर, एस्सार, जे.पी., जैसी निजी कम्पनियों के बिजलीघरों और धातु उद्योगों के लिये विस्तृत भूमि अधिग्रहण का आदिवासियों और किसानों द्वारा विरोध।
- **उत्तर प्रदेश** के अलीगढ़ जिले में टप्पल में यमुना एक्सप्रेस वे के लिये, इलाहाबाद में करछना में जे.पी. के बिजलीघर के लिये तथा बलिया, गाज़ीपुर, वाराणसी और मिर्ज़ापुर के गाँवों में गंगा एक्सप्रेस वे के लिये, भूमि अधिग्रहण का व्यापक किसान विरोध।
- **महाराष्ट्र** में विदर्भ में तापीय बिजलीघरों के लिये और रत्नागिरी में जैतापुर में परमाणु बिजलीघर के लिये भूमि अधिग्रहण का किसानों द्वारा विरोध।
- नदियों पर बनाये जा रहे बाँधों का विरोध सभी जगहों पर हुआ है। ये विरोध ज्यादातर आदिवासियों द्वारा उनके विस्थापन के खिलाफ हुए हैं।

इन संघर्षों का नेतृत्व अलग–अलग संगठनों के हाथों में हैं। उनकी विचारधारायें भी बहुधा अलग–अलग ही हैं। लेकिन लगभग सभी विस्थापन विरोधी आन्दोलन **जीने के अधिकार** के वैचारिक फलक से अपना तार्किक आधार बनाते हैं।

मुआवजे की राजनीति

प्रभावित समाज विस्थापन के विरोध में आवाज उठाता है। किंतु बेदखली और पुनर्वास के कानून का हवाला, सरकारी दबाव व दलालों की सक्रियता प्रभावित समाज की एकता को तोड़ती है तथा विरोध के संघर्ष भी मुआवजे पर बात करने के लिये तैयार हो जाते हैं।

अनेक बार संघर्ष संगठित करने वाला नेतृत्व भी अपनी विकास की धारणा के चलते बेदखली को सर्वथा अनुचित नही मानता और अधिकतम मुआवजा हासिल करना ही न्यायसंगत मानता है। मुआवजे की रकम, पुनर्वास की शर्तें और परियोजना में नौकरी जैसी बातें संघर्ष में महत्वपूर्ण स्थान पा जाती हैं। इस सबके चलते **जीने के अधिकार** जैसा बुनियादी विचार भी नज़रअन्दाज हो जाता है।

इस तरह विस्थापन विरोध का आन्दोलन मुआवजे की राजनीति का शिकार हो जाता है। मुआवजे की शर्तों की तोड़–मरोड़, पुलिस और प्रशासन की ज़ोर–ज़बर्दस्ती और किसानों व आदिवासियों की गरीबी के चलते मुआवजा विस्थापन के पूरे परिदृश्य का केन्द्रीय मुद्दा बना दिया जाता है।

जनता खूब समझती है कि मुआवजा कितना भी क्यों न मिले, विस्थापन में तबाही का पैगाम ही है। लेकिन परिस्थितियों से विवश तथा किसी उम्मीद के अभाव में मुआवजा लेना उसकी मजबूरी बन जाती है। मुआवजा कई तरह से तबाही लाता है–

- **सामान्य किसान या आदिवासी के पास अचानक आई इस बड़ी रकम को बाजार की पूँजीवादी ताकतें वापस खींच लेती हैं और ये जल्दी ही विपन्न हो जाते हैं।**
- **ज्यादा से ज्यादा मुआवजा (रू. 25 लाख प्रति एकड़) भी परियोजना की लागत का मुश्किल से एक फीसदी ही बनता है। इसलिये मुआवजे की राजनीति सरकार या उद्योगपति के ही हाथ का एक खिलौना बन जाती है और लोकविद्याधर समाज उसका असहाय शिकार बनता है।**
- **मुआवजा समाज और परिवार में आपसी झगड़े पैदा करता है।**

अगर मुआवजे की भ्रामक राजनीति से बाहर निकलना है तो जीने के अधिकार की अपनी समझ को और गहरा करना होगा

जीने के अधिकार का अर्थ

- पूँजीवाद और साम्राज्यवाद की सारी व्यवस्थायें किसानों और आदिवासियों से उनकी ज़िन्दगी छीनने पर ही आधारित रही हैं। कानून चाहे जो भी हो, जमीन और प्रकृति से जुड़े लोगों के **जीने के अधिकार** को इस दौर में कभी मान्यता नही मिली।
- पश्चिम के ज्ञान–विज्ञान ने सत्य को समाज से अलग कर दिया। प्रगति और विकास जैसे मूल्यों का महत्व **जीने के अधिकार** के ऊपर कर दिया। नतीजे स्वरूप प्रकृति और लोकविद्याधर समाज का विनाश विकास की कीमत के रूप में देखा जाने लगा।
- लोकविद्या ज्ञान का वह रूप है जो मनुष्य, समाज और प्रकृति के आापसी तालमेल में सत्य को देखता है। **जीने का अधिकार वास्तव में लोकविद्या के बल पर जीने का अधिकार है।**

लोकविद्या जीवनयापन अधिकार

लोकविद्या के बल पर जीने के अधिकार में निम्नलिखित निहित है–

– जीवन का मुख्य आधार प्राकृतिक संसाधनों में है।
– ज्ञान मनुष्य का प्राकृतिक गुण है।
– किसी को भी उन संसाधनों से अलग नही किया जा सकता, जिनका उपयोग वह जीवनयापन के लिये अपने ज्ञान के बल पर करता है।
– संसाधनों से अलग करना मनुष्य को उसके ज्ञान से अलग करने के बराबर है।
– ये मनुष्य समाज के अलिखित सिद्धांत हैं।

लोकविद्या के बल पर जीने के अधिकार को संवैधानिक अधिकार का दर्जा देना चाहिये।

विस्थापन के सक्षम विरोध का आधार लोकविद्या के बल पर जीने और समाज संगठित करने के मूल्य में ही हो सकता है। इसी मूल्य में पूरे लोकविद्याधर समाज यानि किसानों, कारीगरों, आदिवासियों और छोटे–छोटे व्यवसाइयों के बुनियादी अधिकार और कर्तव्य निहित हैं।

लोकविद्या के आधार पर जीवनयापन का अधिकार मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है

लोकविद्याधर समाज की एकता में ही विस्थापन रोकने की ताकत है

विस्थापन विरोधी संघर्षों के जरिये लोकविद्याधर समाज में व्यापक आपसी एकता स्थापित करने के युगांतरकारी मौके पैदा हुए हैं। इसी एकता के बल पर लोकविद्याधर समाज शोषण, गरीबी और पूँजी की सत्ता की स्थितियों को पूरी तरह बदल दे सकता है।

सामाजिक कार्यकर्ताओं को यह मौका पहचानना होगा। यह पहचानना होगा कि विस्थापन के खिलाफ संघर्ष और लोकविद्या के बीच का रिश्ता इस दुनिया को बदलने और बराबरी की एक दुनिया बनाने का सैद्धांतिक और व्यावहारिक आधार देता है।

लोकविद्या जीवनयापन अधिकार के लिये व्यापक संघर्ष छेड़ने की ज़रूरत है

•

लोकविद्या से सम्बन्धित प्रकाशन

वैश्वीकरण और सूचना के युग में समाज में बराबरी, न्याय और भाईचारे के लक्ष्य प्राप्त करने का सैद्धांतिक और व्यावहारिक आधार लोकविद्या विचार तथा लोकविद्याधर समाज की व्यापक एकता में है। लोकविद्या से अनुप्राणित आन्दोलन में ही प्रकृति से तालमेल स्थापित करने की क्षमता हो सकती है।

लोकविद्या विचार कई प्रकाशनों के मार्फत सामने लाया गया है। अभी तक के प्रकाशनों की सूची नीचे दी जा रही है। विद्या आश्रम से इन्हें प्राप्त किया जा सकता है।

हिन्दी

- लोकविद्या विचार पुस्तक
- राम अधार गिरि : लोकहित के प्रहरी पुस्तक
- लोकविद्या संवाद पत्रिका के विशेष अंक
  - कारीगर अंक
  - किसान अंक
  - नारी अंक
  - स्थानीय बाजार अंक
  - सूचना युग में समाज में ज्ञान पर वार्ता अंक
  - साहित्य विद्या अंक
- लोकविद्या पंचायत पत्रिका वर्तमान प्रकाशन
- ज्ञान की राजनीति पुस्तकमाला
  - बौद्धिक सत्याग्रह
  - लोगों के हित की राजनीति और ज्ञान का सवाल
  - ज्ञान मुक्ति आवाहन
  - युवा ज्ञान शिविर
  - लोकविद्या

अंग्रेजी

Books

- Gandhi's Challenge to Modern Science
- Lokavidya, Internet and the Future of the University

Bulletins : Dialogues on Knowledge in Society

- Knowledge in Society
- Virtuality and Knowledge in Society
- Knowledge Satyagraha
- Radical Politics and the Knowledge Question

विद्या आश्रम की वेबसाइट www.vidyaashram.org पर आश्रम के सदस्यों के कई महत्वपूर्ण लेख उपलब्ध हैं। ऊपर दिये गये लगभग सभी प्रकाशन भी वेबसाइट पर उपलब्ध हैं।

लोकविद्या पंचायत

विद्या आश्रम से *लोकविद्या पंचायत* पत्रिका प्रकाशित होती है। अभी तक इसके पाँच अंक निकल चुके हैं। अब से यह प्रति माह प्रकाशित होगी।

पत्रिका के उद्देश्य

- **सूचना युग में बराबरी के विचार का पुनर्निर्माण**
- **लोकविद्याधर समाज के पुनर्संगठन का वैचारिक आधार तैयार करना**
- **पूँजी आधारित समाज के स्थान पर ज्ञान आधारित समाज के निर्माण का विचार बनाना**

सहयोग

इस पत्रिका के प्रकाशन में आप निम्नलिखित तरीकों से सहयोग कर सकते हैं।

- खुद पत्रिका के सदस्य बनें और सदस्य बनायें
- पत्रिका में लोकविद्याधर समाज के अधिकार, समस्यायें, संघर्ष और संगठनों के बारे में लिख भेजें।
- पत्रिका की सामग्री पर समाज में वार्ता छेड़ें।

सहयोग राशि

- एक पत्रिका का मूल्य रु. 5.00 मात्र
- सदस्यता राशि रु. 50.00, जिसमें 12 अंक दिये जायेंगे।

सम्पर्क करें–

विद्या आश्रम

सा10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी–221007

फोन : 0542–2595120

ई–मेल : vidyaashram@gmail.com

विस्थापन मनुष्य को अपनी हर चीज से अलग कर देता है। अपना समाज, ज्ञान, काम, विरासत, परिवेश, सब कुछ बिछुड़ जाता है। नतीजे स्वरूप उसकी दुनिया में अंधकार छा जाता है। वह केवल सत्ताधारी लोगों की सेवा का एक पुर्जा बन जाता है।

हमें अपने चारों तरफ इतने गरीब और मजबूर लोगों को देखने की आदत पड़ गई है कि उनके कष्ट और उन पर हो रहे अन्याय का हम पर कोई असर ही नही पड़ता। न हम कोई दखल लेते हैं और न दखल लेने वालों का आगे बढ़कर समर्थन ही करते हैं।

आज विस्थापन इस कष्ट, गरीबी, मजबूरी और अन्याय के प्रतीक के रूप में उभरा है। सड़क के किनारे टूटी–फूटी झोपड़ियों में रहने वाले, ईंट–भट्ठों, सड़कों और इमारतों के निर्माण में काम करने वाले, तमाम छोटी–छोटी खान–पान व अन्य दुकानों में काम करने वाले बच्चे, विस्तार पा रहे मध्य वर्ग के घरों में झाड़ू–पोंछा–बर्तन करने वाली महिलायें, ये सब विस्थापन के शिकार समाजों और परिवारों के लोग होते हैं। किसी को उसके स्थान और काम से बेदखल करना मानव इतिहास में लूट और शोषण का एक बहुत बड़ा हथियार रहा है। यही हथियार आज फिर इस देश में बहुत बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया जा रहा है। यह पुस्तिका वह समझ बनाने का प्रयास है जो इस स्थिति के खिलाफ एक निर्णायक लड़ाई का रास्ता बनाने में मदद करे।